हिंदी दिवस: एक दिन ही क्यों? हर दिन हिंदी दिवस हो!

सितम्बर की हवाओं में न जाने कौन सी मादकता है कि हिंदी के दिवाने झूमने लगते है। देश के कोने-कोने से समाचार आने लगते है कि हिंदी को बढ़ावा मिले इसके लिए महानगर, शहर, गॉव, गली, मुहल्लों में संगोष्ठी की जा रही है। कवि गोष्ठी की जा रही है। लोगों को हिंदी के प्रति आकर्षित करने के लिए तरह तरह के आयोजन किए जा रहे है। इस वर्ष कोरोना के चलते सारे आंदोलन अन्तर्जाल पर संचलित हो रहे है।

हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने की मांग इस तरह की गतिविधियों का संचालन कुछ हिंदी प्रेमी करते है। लेकिन आठ-दस हजार की जनसंख्या वाले किसी गॉव में होने वाले इन आयोजनों में भागीदारी करने वालों की संख्या देखें तो चौकाने वाली होगी। मात्र दस- बीस लोग ही इस तरह के आयोजनों में भागीदार दिखेंगे। नगर हो या महानगर हो अधिकतम सौ-डेढ सौ लोग हिंदी के नाम पर आयोजित किसी चर्चा में उपस्थित होते है। जो कि आंदोलन को अपने बलबुते पर चला रहे है। अपनी मांग रखते आ रहे है। लेकिन हिंदी को राजभाषा से राष्ट्रभाषा बनाने के तमाम प्रयास पिछले सात दशक से आज

तक ज्यों के त्यों है। हिंदी के नाम पर संघर्ष के लिए तीसरी पीढ़ी तैयार हो गई पर संघर्ष खत्म होने के आसार नहीं दिख रहे।

साहित्यिक आंदोलनों से परिवर्तन की पहल सदा से होती रही है। पर जब तक राजकीय इच्छा शक्ति का साथ नहीं हो तब तक हिंदी दिवस या हिंदी माह मना लेने भर से हिंदी को राष्ट्रभाषा हम नहीं बना सकते। नई शिक्षा नीति में जो मातृभाषा के लिए प्रावधान किए गये है वो सुखद है। उम्मीद की किरण है। और एक मजबूत राह है। हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए।

हिंदी को सम्मान दिलाने के लिए सरकार से अपनी मांग बनाए रखना तो ठीक है पर हिंदी से पहले मातृभाषा याने लोकभाषाओं को जीवित रखने के लिए व्यवहारिक प्रयास हमें करने होंगे। लोगों को अपनी मातृभाषा के आरंभिक संस्कार घर से ही मिलते हैं, जिसमें परिवार की महिलाओं की अहम् भूमिका होती है। जो भाषा घुट्टी में मिली हो उसी भाषा को मातृभाषा कहा जाता है। मातृभाषा शब्द केवल मां का पर्याय नहीं होता है वह हमारे मूल परिवेश को इंगित करता है जिसमें व्यक्ति का बचपन बीता है। जिसमें जीवन की शुरुआत हुई हो।

हम मध्यप्रदेश की लोक भाषाओं कि ही बात करे तो मालवी, निमाड़ी, बुंदेली, बघेली, गोंड़वी, ब्रज, भीली, कोरकू, बेगी, आदि जो लोक भाषाएँ है वे हाशिए पर आ गई है। कुछ बोलियों के बोलने वाले तो केवल ग्रामीण या आदिवासी अंचल में रह गये है। नई पीढ़ी अपनी पारम्परिक बोली में बात करने में शर्म महसूस करती है। कुछ शब्द तो हमारी पीढ़ी ने भी इन लोकभाषाओं के नहीं सुने है। जो शब्द रहे है उसे भी बोलने वाले अब विदा हो रहे हैं। जो कि एक बोली का अवसान नहीं एक संस्कृति का एक सभ्यता का और एक परम्परा का अवसान है।

हिन्दी की समृद्धि में लोकभाषाओं का, बोलियों का अहम योगदान रहा है। आज जो हिंदी का स्वरूप है। उसमें भारत की हर बोली, हर भाषा का अंश है। जो हिंदी को वैश्विक पटल पर बड़ी पहचान दिलाता है। हम रहन-सहन से कितने भी आधुनिक हो पर आने वाली पीढ़ी की जड़े यदि मजबूत रखना चाहते है, संस्कार और सभ्यता को बचाना है तो स्थानीय व्यवहार में, व्यापार में और बोलचाल में अपनी लोकभाषा को महत्व देना होगा । बाहरी व्यवहार में जहॉ उस बोली को समझा नहीं जा सके वहॉ हिंदी को महत्व दे। आज हिंदी पूरे भारत में पढ़ी और आसानी से समझी जा रही है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी अब हिंदी का डंका बज रहा है। गुगल जैसा वैश्विक मंच हिंदी को पूरा महत्व देते हुए सारी जानकारी हिंदी में उपलब्ध करवा रहा है।

अंग्रेजी या अन्य विदेशी भाषा में दक्षता प्राप्त करना बुरा नहीं है। यह अतिरिक्त योग्यता है। जो हर किसी में होना चाहिए लेकिन अपनी बोली अपनी भाषा और अपनी राष्ट्रभाषा को छोड़ कर नहीं। हिंदी को और स्थानीय भाषाओं को यदि सम्मान दिलाना है तो पाठ्य पुस्तक से निर्मित मानव से कुछ नहीं होगा। इसके लिए हमें अपने परिवेश अपनी विचारधारा और अपने कर्तव्यों में हिंदी का उपयोग करना होगा।

वे तमाम लोग जो हिंदी के लिए आंदोलन कर रहे हैं उनको सबसे पहले अपने लिए नियम बनाना होंगे कि हम बच्चों से पढ़ाई के समय को छोड़कर हिंदी का अधिकतम उपयोग करेंगे। हमारा जोर हिंदी के

शब्दों और अभिव्यक्तियों के प्रयोग पर रहेगा। हमारे बच्चे का दिमाग हिंदी में भी अन्य भाषाओं की अपेक्षा समान रूप से चलेगा, उनकी हिंदी कामचलाऊ या हंग्लिश ना होकर स्तरीय होगी। केवल 14 सितम्बर को ही नहीं हर दिन को हिंदी दिवस बनाना होगा। तभी हिंदी को राष्ट्रभाषा का सम्मान प्राप्त होगा।

-संदीप सृजन
संपादक-शाश्वत सृजन
ए-99 वी.डी. मार्केट, उज्जैन (म.प्र.)
मो. 9406649733
मेल- sandipsrijan.ujjain@gmail.com